वर्तमान में ज्ञान

सुनीत

शोधछात्रा तिलक महाविद्यालय औरेया छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर, उ0प्र0

Author Email: sunit101086@gmail.com

ज्ञान की पराकाष्ठा या गुणवत्ता को प्रदर्शित करने हेतु अनेक सुभाषित कहे गए हैं। *'विद्या ददाति विनयम ' [1], सा विद्या या विमुक्तये' [2], 'विद्या नरस्य रूपमधिकम् '[3] ,'येषां न विद्या न तपो न दानम् ' [4], विद्या सा वैकृता ', 'विद्या धनम् सर्व धनम् प्रधानम् ' [5], 'शिक्षा वह शेरनी का दूध है इसे जो पियेगा वह दहाड़ेगा' [6]* ज्ञान अथाह है, अनंत है, चिर स्थाई है। ज्ञान मनन, चिंतन तथा ध्यान का विषय है। ज्ञान में शक्ति तो इतनी है, जो किसी भी मृत शरीर में जीवन का संचार कर दे। ज्ञान में ही शक्ति है जो किसी के बेरंग पड़े जीवन में विविध रंग भर दे। ज्ञान हमें जीवन जीने की कला सिखाता है। हमें आनंद के पथ पर ले जाता है। धन का स्रोत है। कीर्ति का आधार है। ईश्वर का वरदान है। ज्ञान है तो सब कुछ पाया जा सकता है, ज्ञान नहीं तो कुछ भी नहीं है। जितने प्रकार का मानव होता, ज्ञान भी उतने ही प्रकार का समझा जा सकता है। मानव जन्म लेते ही ज्ञान प्राप्त करने लगता है और मृत्युपर्यन्त करता ही रहता है। ज्ञान अपना स्वरूप समयानुकूल बदलता रहता है। जैसे जल की धारा अपने रूप को तट के अनुकूल बना लेती है। उसी प्रकार ज्ञान मनुष्य जीवन को सुचारु एवं सुगम जीवन जीने हेतु विविध कलाओं को सिखाता है। जैसे शिष्टाचार, संर्घषपूर्ण जीवन की समझ तथा धनार्जन की शिक्षा आदि में पारंगत होना सभी कुछ प्रारम्भिक दौर में सीखकर सम्पूर्ण जीवन के लिए तैयार होते हैं। ग्रहस्थ जीवन में भूतकालीन पीढ़ी एवं भविष्यकालीन पीढ़ी का पालन पोषण करते आदि समय बीतता है। आज का मानव जरावस्था तक जीवन जीने के विशेष ढ़ग को अपनाता रहता है। ऐसा लगता है कि ज्ञान भौतिकता से इतर कुछ है ही नहीं। जबकि प्राचीन काल में मानव के ज्ञान प्राप्ति का तरीका ही कुछ अलग था। बच्चों को अधिकांशतः घर तथा समाज से दूर रखकर भौतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक आादि शिक्षा दी जाती थी। इस समय की शिक्षा आधुनिक और प्राचीन समान ही है परन्तु प्रौढ़ावस्था अलग थी जो घर एवं वन के बीच की कड़ी कही जा सकती थी। और जीवन के अंतिम चरण में घर छोड़कर पूर्णतः वन में रहकर आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करते तथा 'सा विद्या या विमुक्तये' के पथ पर अग्रसर होना सीखते थे। अर्थात् कहा जा सकता है कि योग्यतानुरूप शिक्षा ग्रहण करते हुए चारो आश्रमों में जीवनयापन करते थे।

सदैव से ही ज्ञान को पवित्रता की मूरत माना जाता है। विद्या ग्रहण करने से पहले सभी जन अपना तन एवं मन पवित्र करके स्वयं को उसे धारण करने हेतु तैयार करते हैं। क्योंकि भारतीय परम्परा विद्या को ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी माता सरस्वती का स्वरूप माने बिना रहती ही नहीं है । अर्थात् जिसे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हो गया, उस मानव पर ज्ञान की देवी की विशेष अनुकम्पा हो गई, ऐसा कहा जा सकता है। इस धरती में जन्मा हर मनुष्य किसी न किसी विशेष कला या विशेष ज्ञान से पूरित होता है। परन्तु वह ज्ञान निखरता भी तभी है, जब किसी सारथी के विशेष सहयोग से उसे परिमार्जित या परिपोषित न किया जाए। सही ज्ञान जब तक सुयोग्य व्यक्ति को न मिले तब तक उस ज्ञान की महत्ता निरर्थक ही रहती है। और ज्ञान सुयोग्य व्यक्ति को भी तभी मिले जब उसकी अति आवश्यकता हो। और वह प्राप्त करने के लिए एकाग्रचित्त होकर पूरी निष्ठा एवं तन्मयता के साथ तैयार हो चुका हो। अन्यथा ज्ञान की महत्ता कुछ ऐसी ही होती है जैसे कि भरे पेट वाले को भोजन कराना। या अवांछित वस्तु कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हो उसका प्राप्त हो जाना। या बिना प्यास के पानी मिलना। परन्तु वही पानी अतिप्यासे को मिले तो उसकी उपयोगिता समझ आती है। महाभारत में भगवान श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश अर्जुन को ही क्यों दिया ? क्या अर्जुन से अधिक ज्ञानवान या उस ज्ञान को समझने वाला कोई दूसरा पूरे कुरुक्षेत्र में नहीं था ? पितामह भीष्म, गुरु द्रोण, गुरु कृपाचार्य, अश्वथामा तथा युधिष्ठिर आदि क्या ये सब अर्जुन से कम थे या फिर ज्ञान का सम्मान नहीं करते थे ? निःसंदेह ये सब अर्जुन के समकक्ष या उनसे कहीं अधिक श्रेष्ठ ही थे। चाहे ज्ञान में हो या फिर शक्ति में अवश्य ही अधिक योग्य एवं पूजनीय जन थे। परन्तु ज्ञान के पिपासु अर्जुन को ही उस ज्ञान की आवश्यकता थी या फिर यूँ कहें कि उस समय उस ज्ञान के योग्य अर्जुन के बिना कोई अन्य पूरे कुरुक्षेत्र में ही नहीं था। अर्जुन की जो मनोदशा थी वह अन्य किसी की भी नहीं थी। अन्य सब अपने किसी न किसी बंधन में भी तो बँधे हुए थे दुर्योधन अपने अहंकार के बंधन में , कर्ण मित्रता के बंधन में , भीष्म अपनी प्रतिज्ञा के बंधन में आदि उन्हें इस ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं थी। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस तरह श्री कृष्ण ने अपने सम्पूर्ण जीवन में केवल एक ही व्यक्ति को गीता का उपदेश दिया क्योंकि उन्हें एक ही सुपात्र मिल पाया दूसरा मिला ही नही ंतो ज्ञान दिया ही नहीं इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उन्होंने सम्पूर्ण जीवन

किसी को ज्ञान ही नहीं दिया। सभी को वही ज्ञान दिया जो जिस ज्ञान का पात्र था , अन्य को नहीं । अन्य उदाहरण है कि चाणक्य ने चंद्रगुप्त को ही राजनीति की शिक्षा दी , क्योंकि पूरी तक्षशिला विश्वविद्यालय में उस ज्ञान को ग्रहण करने वाला और कोई नहीं था। ज्ञान प्राप्त करना एक पक्ष है और उसे क्रियान्वित करना दूसरा पक्ष। अर्जुन जिसके हाथ पैर काँप रहे थे स्वयं से खड़ा भी नहीं हो पा रहा था वह ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत सम्पूर्ण युद्ध को जीतने का सूत्रधार बन जाता है। चन्द्रगुप्त जो शिक्षा से दूर था चाणक्य से ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत सबसे शक्तिशाली मगध के साम्राज्य को बदलकर रख देने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। यही ज्ञान की सही परिभाषा एवं उपयोगिता है।

वर्तमान समय में ज्ञान की अतिचिन्तनीय दशा है। सम्पूर्ण विश्व को जीत लेने का सामर्थ्य रखने वाला ज्ञान, संसार की सर्वोत्तम पराकाष्ठा का हो या अतिनिकृष्ट ज्ञान आज गलियों गलियों में दूरभाष यंत्र के माध्यम से बिखरा हुआ रहता है। चाहें ज्ञान की आवश्यकता हो या न हो, ज्ञान लेने वाला व्यक्ति किसी भी दशा में हो, उसे भी चारों ओर जहाँ भी दृष्टि पड़े ज्ञान ही ज्ञान दिखाई पड़ता है। इतना अधिक ज्ञान है कि उसे संजो पाना भी असम्भव सा हो रहा है। मनुष्य किसी भी दशा में हो कोई भी ज्ञान मिल जाता है। ऐसा लगता है कि वर्तमान समय में लोगों के हाथों में फोन आ जाने के उपरांत ज्ञान इतना क्षीण कैसे हो सकता है। अवश्य ही यह चिंतन का विषय है। शायद इसलिए तो नहीं कि जो ज्ञान हमें मानसिक रूप से तैयार हो जाने के उपरांत मिलता था, वह आज बिस्तर पर आँख खुलते ही मिल जाता है । जब ठीक से निंद्रा टूटी भी नहीं होती है, मस्तिष्क भी कहीं और ही होता है। ज्ञान मुट्ठी में बंद सदैव सबके साथ – साथ घूमता है, वह जब चाहे देख सकता है जब चाहे सीख सकता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो ज्ञान की स्थिति पालतू कुत्ते की तरह हो गई है। आखिर ज्ञान का इतना निम्न स्तर कैसे हो सकता है। जो कहीं भी राह चलते, सिगरेट या शराब पीते हुए नालियों में चौपालों में किसी भी निम्न से निम्न स्तर तक जाकर ज्ञान सहजता से प्राप्त हो जाता है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'[7] यह उक्ति सही प्रतीत होती है। गूढ़ से गूढ़ ज्ञान मानव सहजभाव से अपने यंत्र में देखता हुआ आगे बढ़ जाता है। आज ज्ञान चिंतन एवं मनन का विषय कम मनोरंजन का विषय अधिक बना हुआ है। यह वही ज्ञान है जो मानव को शुद्ध पवित्र बन तैयार हो जाने के उपरांत, क्रमबद्ध तरीके से दिया जाता था। शायद इसीलिए प्राप्त ज्ञान के अर्थ पर एक बार विचारा भी नहीं जाता। परन्तु यह ध्यान देना होगा कि ज्ञान का स्तर जितना नीचे होगा मानव जाति भी उतना ही नीचे होगी। जब ज्ञान का स्तर ऊपर था तब भारत विश्व गुरु था। लोग देश विदेश से उसी ज्ञान को प्राप्त करने के लिए भारत आते थे। वास्तव में ज्ञान का स्तर नहीं गिरता हमारी सोच का स्तर गिरता है। जिस प्रकार चबाचबाकर एवं आवश्यकतानुसार किया हुआ भोजन ही पाचक एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है जल्दी जल्दी एवं आवश्यकता से अधिक किया भोजन हानिकारक ही होता है उसी प्रकार चिन्तन एवं मनन के साथ धीरे–धीरे पचाया गया ज्ञान भी लाभकारी होता है जल्दी जल्दी एवं आवश्यकता से अधिक प्राप्त ज्ञान भी कष्टकारी ही होता है।

ज्ञान अपना स्तर नहीं गिराता, स्तर तो हमारी मानसिकता का गिरा हुआ होता है। जिस प्रकार हीरे की परख जौहरी ही कर सकता है यदि जौहरी हीरे को नहीं पहचान पा रहा है तो इसमें दोष हीरे का नहीं बल्कि जौहरी का ही है, हीरा तो हीरा ही रहेगा। उसी प्रकार ज्ञान को यदि हम भलीभाँति ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं, तो इसमें ज्ञान का नहीं बल्कि हमारा ही दोष है। ज्ञान तो श्रेष्ठ ही रहेगा। शायद इसीलिए हम मनोरंजन दूरभाषयंत्र (फोन) में ढूढते रहते है फिर भी दुखी रहते है। साथी फेशबुक में बनाए रहते है फिर भी हम एकांकी रहते है। परिवार एकसाथ बना रहता है फिर भी सभी अलग थलग एवं गुमशुम होते है। ज्ञान अथाह प्राप्त है फिर भी अज्ञानी से प्रतीत होते है। समझदार बहुत दिखाई पड़ते है पर अवसादग्रसित रहते है। हम वर्तमान समय में चेतनाशून्य हो रहे हैं, संकीर्ण मानसिकता वाले हो रहे हैं। इस यंत्र का केवल नकारात्मक पहलू ही नहीं है सकारात्मक भी है इसका साथ पाकर कुछ ने अपना जीवन सँवार भी लिया, परन्तु बर्बाद होने वालों की संख्या बहुत ही अधिक है। इसलिए चलो हम स्वयं जागते है और सभी को जगाते है। अन्यथा हम कहीं इतने नीचे न चले जाएँ कि जिसकी हमने कल्पना भी न की हो और फिर वहाँ से वापस आना असम्भव ही हो।

संदर्भ ग्रंथ

1 हितोपदेश।
2 छन्दोग्योपनिषद्।
3 नीतिशतक, विद्वत् पद्धति श्लोक संख्या 19।
4 चाणक्य नीति, श्लोक संख्या 10/7।
5 सुभाषितानि।
6 डॉ0 भीमराव अम्बेडकर।

7 चाणक्य नीति, श्लोक संख्या 3/12।